Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language,
Online ISSN 2348-3083, SJ IMPACT FACTOR 2021: 7.278, www.srjis.com
PEER REVIEWED & REFEREED JOURNAL, DEC-JAN, 2022, VOL-10/49

सामाजिक न्याय के सृजन में साहित्य की भूमिका

ब्यूटी सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, बी॰डी॰एम॰एमयू महिला महाविद्यालय, शिकोहाबाद

Paper Received On: 25 JAN 2022
Peer Reviewed On: 31 JAN 2022
Published On: 1 FEB 2022

Scholarly Research Journal's* is licensed Based on a work at *www.srjis.com

सामाजिक न्याय (social justice) की बुनियाद सभी मनुष्यों को समान मानने के आग्रह पर आधारित है। इसके मुताबिक किसी के साथ सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक पूर्वग्रहों के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। हर किसी के पास इतने न्यूनतम संसाधन होने चाहिए कि वे 'उत्तम जीवन' की अपनी संकल्पना को धरती पर उतार पाएँ। विकसित हों या विकासशील, दोनों ही तरह के देशों में राजनीतिक सिद्धांत के दायरे में सामाजिक न्याय की इस अवधारणा और उससे जुड़ी अभिव्यक्तियों का प्रमुखता से प्रयोग किया जाता है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि उसका अर्थ हमेशा सुस्पष्ट ही होता है। सिद्धांतकारों ने इस प्रत्यय का अपने-अपने तरीके से इस्तेमाल किया है। व्यावहारिक राजनीति के क्षेत्र में भी, भारतजैसे देश में सामाजिक न्याय का नारा वंचित समूहों की राजनीतिक गोलबंदी का एक प्रमुख आधार रहा है। उदारतावादी मानकीय राजनीतिक सिद्धांत में उदारतावादी-समतावाद से आगे बढ़ते हुए सामाजिक न्याय के सिद्धांतीकरण में कई आयाम जुड़ते गये हैं। मसलन, अल्पसंख्यक अधिकार, बहुसंस्कृतिवाद, मूल निवासियों के अधिकार आदि। इसी तरह, नारीवाद के दायरे में स्त्रियों के अधिकारों को ले कर भी विभिन्न स्तरों पर सिद्धांतीकरण हुआ है और स्त्री-सशक्तीकरण के मुद्दों को उनके सामाजिक न्याय से जोड़ कर देखा जाने लगा है। (रोंल्स, जे.1971)

इसी के साथ-साथ मानकीय उदारतावादी सिद्धांत में राज्य द्वारा समाज के कुछ तबकों की भलाई या कल्याण के लिए ज़्यादा आय वाले लोगों पर टैक्स लगाने का मसला विवादास्पद बना रहा। कींस ने पूँजीवाद को मंदी से उबारने के लिए राज्य के हस्तक्षेप के ज़रिये रोज़गार पैदा करने के प्रावधानों का सुझाव दिया, लेकिन फ्रेड्रिख़ वान हायक, मिल्टन फ्रीडमैन और बाद में रॉबर्ट नॉज़िक जैसे विद्वानों ने आर्थिक गतिविधियों में राज्य के हस्तक्षेप की आलोचना की। इन लोगों का मानना था कि इससे व्यक्ति की स्वतंत्रता और आर्थिक आज़ादी को चोट पहुँचती है। जॉन रॉल्स ने 1971 में अपनी किताब अ थियरी ऑफ़ जस्टिस में ताकतवर दलीलें दीं आख़िर क्यों समाज के कमज़ोर तबकों की भलाई के लिए राज्य को सक्रिय हस्तक्षेप करना चाहिए। अपनी थियरी में रॉल्स शुद्ध प्रक्रियात्मक न्याय की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए वितरणमूलक न्याय के लक्ष्य को हासिल करने की कोशिश करते हुए दिखाई देते हैं। अपने न्याय के सिद्धांत में उन्होंने हर किसी को समान स्वतंत्रता के अधिकार की तरफ़दारी की। इसके साथ

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

ही भेदमूलक सिद्धांत के माध्यम से यह स्पष्ट किया कि सामाजिक और आर्थिक अंतरों को इस तरह समायोजित किया जाना चाहिए कि इससे सबसे वंचित तबके को सबसे ज़्यादा फ़ायदा हो। (ज़िलियट, ई.1986)

समुदायवादियों और नारीवादियों की द्वारा की गयी आलोचनाओं का विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है। समुदायवादियों ने सामान्य तौर पर उदारतावाद और विशेष रूप से रॉल्स के सिद्धांत की इसलिए आलोचना की कि इसमें व्यक्ति की अणुवादी संकल्पना पेश किया गया है। रॉल्स जिस व्यक्ति की संकल्पना करते हैं वह अपने संदर्भ और समुदाय से पूरी तरह कटा हुआ है। बाद में, 1980 के दशक के आख़िरी वर्षों में, उदारतावादियों ने समुदायवादियों की आलोचनाओं को उदारतावाद के भीतर समायोजित करने की कोशिश की जिसके परिणामस्वरूप बहुसंस्कृतिवाद की संकल्पना सामने आयी। इसमें यह माना गया कि अल्पसंख्यक समूहों के साथ वास्तविक रूप से तभी न्याय हो सकता है, जब उन्हें अपनी संस्कृति से जुड़े विविध पहलुओं की हिफ़ाज़त करने और उन्हें सार्वजनिक रूप से अभिव्यक्त करने की आज़ादी मिले। इसके लिए यह ज़रूरी है कि इनके सामुदायिक अधिकारों को मान्यता दी जाए। इस तरह सैद्धांतिक विमर्श के स्तर पर बहुसंस्कृतिवाद ने सामाजिक न्याय की अवधारणा में एक नया आयाम जोड़ा। (किमलिका, 1996)

यहाँ उल्लेखनीय है कि साठ के दशक से ही पश्चिम में नारीवादी आंदोलन, नागरिक अधिकार आंदोलन, गे, लेस्बियन और ट्रांस-जेंडर आंदोलन और पर्यावरण आंदोलन आदि उभरने लगे थे। बाद के दशकों में इनका प्रसार ज़्यादा बढ़ा और इन्होंने सैद्धांतिक विमर्श को भी गहराई प्रदान की। मसलन, नारीवादियों ने उदारतावाद और रॉल्सवादी रूपरेखा की आलोचना की। अपने विश्लेषण द्वारा उन्होंने पितृसत्ता को नारीवादियों के समान हक के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट के रूप में रेखांकित किया। इसी तरह, गे, लेस्बियन और ट्रांस- जेंडर लोगों ने समाज में 'सामान्य' या 'नार्मल' की वर्चस्वी रूपरेखा पर सवाल उठाया और अपने लिए समान स्थिति की माँग की। नागरिक अधिकार आंदोलनों द्वारा पश्चिम में, ख़ास तौर पर अमेरिकी समाज में काले लोगों ने अपने लिए बराबरी की माँग की। मूल निवासियों ने भी अपने सांस्कृतिक अधिकारों की माँग करते हुए बहुत सारे आंदोलन किये हैं। बहुसंस्कृतिवादियों ने अपनी सैद्धांतिक रूपरेखा में इन सभी पहलुओं को समेटने की कोशिश की है। इन सभी पहलुओं ने सामाजिक न्याय के अर्थ में कई नये आयाम जोड़े हैं। इससे स्पष्ट होता है कि विविध समूहों के लिए सामाजिक न्याय का अलग-अलग अर्थ रहा है। (नेहा गोस्वामी)

असल में विकासशील समाजों में पश्चिमी समाजों की तुलना में सामाजिक न्याय ज़्यादा रैडिकल रूप में सामने आया है। मसलन, दक्षिण अफ़्रीका में अश्वेत लोगों ने रंगभेद के ख़िलाफ़ और सत्ता में अपनी हिस्सेदारी के लिए ज़ोरदार संघर्ष किया। इस संघर्ष की प्रकृति अमेरिका में काले लोगों द्वारा चलाये गये संघर्ष से इस अर्थ में अलग थी कि दक्षिण अफ़्रीका में काले लोगों को ज़्यादा दमनकारी स्थिति का सामना करना पड़ रहा था। इस संदर्भ में भारत का उदाहरण भी उल्लेखनीय है। बहुसंस्कृतिवाद ने जिन सामुदायिक अधिकारों पर जोर दिया उनमें से कई अधिकार भारतीय संविधान में पहले से ही दर्ज हैं। लेकिन यहाँ सामाजिक न्याय वास्तविक राजनीति में संघर्ष का नारा बन कर उभरा। मसलन, भीमराव आम्बेडकर और उत्पीड़ित जातियों और समुदायों के कई नेता समाज के हाशिये पर पड़ी जातियों कोशिक्षित और संगठित होकर संघर्ष करते हुए अपने न्यायपूर्ण हक को हासिल करने की

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

विरासत रच चुके थे। इसी तरह पचास और साठ के दशक में राममनोहर लोहिया ने इस बात पर जोर दिया कि पिछड़ों, दलितों, अल्पसंख्यकों और स्त्रियों को एकजुट होकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करना चाहिए। लोहिया चाहते थे कि ये समूह एकजुट होकर सत्ता और नौकरियों में ऊँची जातियों के वर्चस्व को चुनौती दें। इस पृष्ठभूमि के साथ नब्बे के दशक के बाद सामाजिक न्याय भारतीय राजनीति का एक प्रमुख नारा बनता चला गया। इसके कारण अभी तक सत्ता से दूर रहे समूहों को सत्ता की राजनीति के केंद्र में आने का मौका मिला। ग़ौरतलब है कि भारत में भी पर्यावरण के आंदोलन चल रहे हैं। लेकिन ये लड़ाइयाँ स्थानीय समुदायों के अपने 'जल, जंगल और जमीन' के संघर्ष से जुड़ी हुई हैं। इसी तरह विकासशील समाजों में अल्पसंख्यक समूह भी अपने ख़िलाफ़ पूर्वग्रहों से लड़ते हुए अपने लिए ज़्यादा बेहतर सुविधाओं की माँग कर रहे हैं। इस अर्थ में सामाजिक न्याय का संघर्ष लोगों के अस्तित्व और अस्मिता से जुड़ा हुआ संघर्ष है। (किमलिका, वी. 2009)

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि सामाजिक न्याय के नारे ने विभिन्न समाजों में विभिन्न तबकों को अपने लिए गरिमामय ज़िंदगी की माँग करने और उसके लिए संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया है। सैद्धांतिक विमर्श में भी यूटोपियाई समाजवाद से लेकर वर्तमान समय तक सामाजिक न्याय में बहुत सारे आयाम जुड़ते गये हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि विकसित समाजों की तुलना में विकासशील समाजों में सामाजिक न्याय का संघर्ष बहुत जटिलताओं से घिरा रहा है। अधिकांश मौकों पर इन समाजों में लोगों को सामाजिक न्याय के संघर्ष में बहुत ज़्यादा संरचात्मक हिंसा और कई मौकों पर राज्य की हिंसा का भी सामना करना पड़ा है। लेकिन सामाजिक न्याय के लिए चलने वाले संघर्षों के कारण इन समाजों में बुनियादी बदलाव हुए हैं। कुल मिला कर समय के साथ सामाजिक न्याय के सिद्धांतीकरण में कई नये आयाम जुड़े हैं और एक संकल्पना या नारे के रूप में इसने लम्बे समय तक ख़ामोश या नेपथ्य में रहने वाले समूहों को भी अपने के लिए जागृत किया है। (जयप्रकाश कर्दम)

हिंदी के महाकाव्य के रूप में रामचरितमानस का अध्ययन करने पर (जो एक समृद्ध साहित्य के रूप में भी जाना जाता है) भी विभिन्न स्थानों पर भगवान श्री राम द्वारा सामाज के हर वर्ग के उत्थान के लिए किये गये विभिन्न कार्यों का वर्णन मिलता है । इस महाकाव्य का अध्ययन करने से समाज में सामाजिक न्याय जैसे गंभीर विषय के प्रीत लोग सचेत होते हैं और समाज के हर वर्ग को आगे बढ़ने का पूरा अवसर देने में भी यकीन रखते हैं। रामचरितमानस के सभी कांडों का यदि अध्ययन करें तो समाज के प्रति स्कारात्मक दृष्टिकोण विकसित होगा जो सामाजिक न्याय में सहयोग करेगा।

श्री वेदव्यास जी ने महाभारत में गीता का वर्णन करने के उपरांत कहा है कि

'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः
या स्व्यं पद्मनाभस्य मुखमद्माद्विनीःसुता.'

अर्थात गीता सुगीता करने योग्य है इसे भली प्रकार पढ़कर अंतःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्तव्य है जो कि स्वयं पद्मनाभ भगवान श्रीविष्णु के मुखारविंद से निकली हुई है। स्वयं श्री भगवान ने भी गीता के महात्मय का बखान किया है। श्रीगीता एक ऐसा अनुपमेय शास्त्र है जिसमें एक भी शब्द सदुपदेश से खाली नहीं है। गीता का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि गीता सामाजिक न्याय पर ही आधारित है

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

"सामाजिक न्याय भी एक ऐसी अवधारणा है, जिसे कुछ लोग सामाजिक रूप से न्याय आधारित संसार की ओर एक आंदोलन के रूप में वर्णित करने के लिए उपयोग करते हैं। इस सन्दर्भ में, सामाजिक न्याय मानव अधिकारों और समानता की अवधारणाओं पर आधारित है और प्रगतिशील कराधान, आय पुनर्वितरण, या फिर सम्पत्ति पुनर्वितरण के माध्यम से अधिक से अधिक आर्थिक समानतावाद को सम्मिलित करता है। इन नीतियों का लक्ष्य यह है कि विकासवादी अर्थशास्त्री वर्तमान में कुछ समाजों में विद्यमान अवसरों की तुलना में अधिक समानता का उल्लेख कर सकते हैं और उन विषयों में समानता के परिणामों का निर्माण कर सकते हैं, जहाँ प्रासंगिक असमानता एक न्याय आधारित प्रक्रिया पद्धति में ही दिखाई देती है।"(बाइबिल)

किसी भाषा के वाचिक और लिखित (शास्त्रसमूह) को साहित्य कह सकते हैं। दुनिया में सबसे पुराना वाचिक साहित्य हमें आदिवासी भाषाओं में मिलता है। इस दृष्टि से आदिवासी साहित्य सभी साहित्य का मूल स्रोत है।

राजनीतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप ही एक सामाजिक वर्ग का आधिपत्य सुनिश्चित होता है और वह अपने विचारों और भावों को साहित्य के माध्यम से प्रकट करता है तथा सामाजिक न्याय की मांग करता है ।" (इनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका)

हिंदी में जनचेतना के सबसे प्रखर कवि हैं- कबीर लेकिन इनकी जनचेतना जनवादी चेतना नहीं है। कबीर का जनसमाज के साथ रिश्ता उभयमुखी था। कबीर समाज को उनकी ताकत से परिचित कराना चाहते थे। उनका सदैव गरीब तबके के लोगों के साथ सहृदय संवेदना जुड़ी रहती थी और कुछ इसी अर्थों में उन्होंने लिखा –

द्वार धनी के पड़ी रहा, धक्का धनी की खाय।
कबहुँक धनी नेवाजई, जो दर छाड़ी न जाई ॥

कबीर की जनचेतना एक मुक्तभोगी की जनचेतना है। उन्होंने निश्चिततः वह गरीबी देखी थी कि जब बारिश के बादल घिरते थे, तो उन्हें सूरदास की गोपियों के आंसुओं से घन को हराने या तुलसी के राम की तरह प्रियाहीन होने से डरने की याद नहीं आती वरन उनका कलेजा काँप उठता है –

घन गरजै, कपै मोरी छाती

क्योंकि घर जर्जर हो उठा है, टाटी खंखण हो चुकी है-

छिनहर घर अरु झिनहर टाटी

व्यावहारिक समीक्षा एवं सामाजिकता की तलाश के इस आज के दौर में , निश्चित है कि यह सब पीछे छूट जायेगा। जैसे प्रत्येक ग्रन्थ की ओट में उसके रचयिता का और प्रत्येक राष्ट्रीय साहित्य की ओट में उसको उत्पन्न करने वाली जाति का व्यक्तित्व छिपा रहता है, वैसे ही काल विशेष के साहित्य की ओट में उस काल के जीवन को रूप विशेष प्रदान करने वाली व्यक्तिमूलक और अव्यक्तिमूलक अनेक संयुक्त शक्तियाँ काम करती रहती हैं। साहित्य उन अनेक साधानों में से एक है जिसमें काल विशेष की स्फूर्ति अपनी अभिव्यक्ति पाकर उन्मुक्त होती है; यही स्फूर्ति परिप्लावित होकर राजनीतिक आन्दोलनों,धार्मिक विचार, दार्शनिक तर्क-वितर्क, सामाजिक न्याय और कला में प्रकट होती है। (स्टडी ऑफ लिटरेचर , विलियम हेनरी हेडसन)

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

आखिरी कलाम में दूधनाथ सिंह ने सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयामों की प्रभावी पहचान करायी है इसमें उन्होंने धर्म, राजनीति, संस्कृति अलग-थलग नहीं है बल्कि उसी में रच बस कर कैसे एकदूसरे को प्रभावित कर रही है इसकी साफ-साफ तस्वीर प्रस्तुत करती है। उपन्यास की मूल कथा 3 दिसंबर से 6 दिसंबर तक महज 4 दिनों की है। जो अयोध्या में घटित हुई है और जिसके केंद्र में है बाबरी मस्जिद का विध्वंस । हिंदी के इस उपन्यास में देश के धार्मिक पुनः जीवन के राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक माहौल को पेश करता है।(सिंह दूधनाथ)
सामाजिक न्याय को सामाजिक अस्मिता के रूप में भी जाना जाता है जिस पर मैनेजर पांडे जी ने अपनी कृति के माध्यम से प्रकाश डाला है वे लिखते हैं- "साहित्यिक समाजशास्त्र का लक्ष्य कृति कि केवल व्याख्या नहीं है यह काम दूसरी आलोचना पद्धतियों में भी होता है। साहित्यिक कृति की सामाजिक अस्मिता की रचना की संदर्भ और सामाजिक अस्तित्व से निर्मित होती है इसलिए साहित्य के समाजशास्त्र इस पूरी प्रक्रिया को समझने की कोशिश होती है। जिसमें कोई रचना साहित्यिक कृति बनती है।" पंडित जी ने अपने कृति के माध्यम सामाजिक अस्मिता पर लोगों का ध्यान आकर्षित कर इसके माध्यम से सामाजिक न्याय की मांग की है जिसका अध्ययन कर समाज के लोग येन केन प्रकारेण इससे प्रभावित होते हैं।

समाज के लोग अपने कर्तव्यों और अधिकारों के लिए विभिन्न प्रकार से प्रयासरत रहते हैं और अपनी विस्तारित करने के लिए विभिन्न माध्यमों का प्रयोग करते हैं साहित्य भी उन्हीं में से एक है इसी बात को ध्यान में रखते हुए बालकृष्ण भट्ट लिखते हैं साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है इसी बात पर हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब है। समाज में न्याय की मांग के लिए अनेकानेक आंदोलन हुई कुछ सकारात्मक तथा कुछ नकारात्मक कार्य किए गए इन सब में संतुलन बिठाकर उचित मार्ग अपनाकर सामाजिक सामंजस्य और सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए साहित्य में आलोचना का आरंभ हुआ इसी संदर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है किस साहित्य के समाजशास्त्र ने साहित्य की अवधारणा विकसित की है जिससे साहित्य का सामाजिक स्वरूप स्पष्ट हो। और समाज से साहित्य के संबंध की व्याख्या संभव हो।

जिस प्रकार से समाज को प्रभावित करता है ठीक उसी प्रकार साहित्य समाज को प्रभावित करता है साहित्य को सामाजिक कर्म का एक रूप सामाजिक कर्म का प्रभाव या प्रतिबिंब सामाजिक कर्म का आदर्श रूप और कभी कभी विशेष परिस्थितियों में दैनिक सामाजिक कर्म की सीमाओं के परी ले जाने वाला क्रिया व्यापार भी माना जाता है। (हिडेन)
साहित्य और समाज हमेशा से एक दूसरे से प्रभावित होते रहे हैं फिर बात चाहे समाज का कोई भी विषय क्यों न हो पर उसका प्रभाव पड़ता ही है। कुछ इसी संदर्भ में मादाम स्तेन ने अपनी पुस्तक की भूमिका में लिखा है-
मैंने साहित्य पर धर्म नैतिकता और कानून के प्रभाव तथा उन सब पर साहित्य के प्रभाव की जांच का प्रयत्न किया है इससे स्पष्ट होता है कि समाज शास्त्रियों ने से लेकर कानून आचार विचार तक विचार किया है जिससे इस शास्त्र को बल मिलता है।

उपर्युक्त तथ्यों का अवलोकन करें तो स्पष्ट होता है कि समाज के विभिन्न पहलुओं पर साहित्य का उतना ही प्रभाव पड़ता है जितना कि समाज का प्रभाव साहित्य पर पड़ता है। सामाजिक न्याय जैसे गंभीर विषय भी इससे

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language

अछूते नहीं है। साहित्य ही वह माध्यम है जिसके द्वारा समाज में न्याय का प्रचार प्रसार होता है और सामाजिक न्याय के माध्यम से सामाजिक सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। समाज में न्याय का सृजन साहित्य के आलोचना, समालोचना, कहानी, नाटक तथा उपन्यास के माध्यम से सृजित होते हैं।

सन्दर्भ-

रॉल्स जे. (1971), अ थियरी ऑफ़ जस्टिस, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, लंदन.
ज़िलियट ई. (1986), 'द सोशल ऐंड पॉलिटिकल थॉट ऑफ़ बी.आर. आम्बेडकर', थॉमस पैंथम और केनेथ एल. ड्युश्च (सम्पा.), पॉलिटिकल थॉट इन मॉडर्न इण्डिया, सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली.
किमलिका वि. (1996), मल्टीकल्चरल सिटीज़नशिप : अ लिबरल थियरी ऑफ़ माइनॉरिटी राइट्स, क्लेरैंडन प्रेस, ऑक्सफ़र्ड.
किमलिका वि. (2009), समकालीन राजनीति दर्शन : एक परिचय, (अनु. कमल नयन चौबे) पियर्सन, नयी दिल्ली.
आखिरी कलाम: दूधनाथ सिंह
साहित्य का समाजशास्त्र: डॉ. नागेन्द्र
समाजशास्त्र के सिद्धांत: डी.आर. सचदेव
रागदरबारी का समाजशास्त्र: जयप्रकाश कर्दम
साहित्य के समाजशात्र: मैनेजर पाण्डेय
समकालीन हिंदी तथा साहित्य में जनचेतना: डॉ.अरुणा लोखंडे
मानव और साहित्य: डॉ. नवल किशोर
नवभारत टाइम्स: बिरेन्द्र कुमार बसवाल
साहित्य शिक्षा और संस्कृति: डॉ. राजेन्द्र प्रसाद
सामाजिक न्याय और दलित साहित्य: डॉ. श्योराज सिंह बेचैन
दलित साहित्य और सामाजिक न्याय: पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी
साहित्य और भारतीय समाज: नन्दलाल भारती
स्त्री विमर्श: भारतीय साहित्य के संदर्भ में, नेहा गोस्वामी
मध्यकालीन साहित्य के सामाजिक सरोकार: सत्यदेव त्रिपाठी
नवजागरण और आलोचना: रमेश कुमार
https://www.prabhatbooks.com/sahitya-shiksha-aur-sanskriti.htm
http://www.hindikunj.com/2018/06/sahitya-siksha-samaj.html
https://www.jagran.com/bihar/darbhanga-12506831.html
http://hihindi.com/sahitya-aur-samaj-par-nibandh/

Copyright © 2022, Scholarly Research Journal for Humanity Science & English Language